
उपसंहार

उपसंहार

सन् 1947 में देश स्वतंत्र हुआ और 1950 ई० में इस देश ने राष्ट्र की मर्यादा अपनाई । सामान्यतः स्वतंत्रता और मर्यादा परस्पर विरोधी मान्यताएं हैं, किन्तु राष्ट्र के संदर्भ में आपसी विरोध का प्रश्न कतई नहीं है । देश भौगोलिक सीमाओं, सामाजिक स्वीकृति-अस्वीकृतियों, परंपरित जीवन मूल्यों, जर्जर मानसिक रूढ़ियों, एवं ओर असुरक्षा के संत्रासों एवं दूसरी ओर राष्ट्रीयता विहीन कुस्य अवधारणा का पूँजीभूत भौतिक विग्रह है और राष्ट्र राजनीतिक तथा प्रशासनिक सत्ता के स्वामित्व एवं विकल्प का एक सामग्रिक बिंब है जो देश के देशत्व को कभी विडंबित तो कभी प्रशंसित कर नागरिकों के लिए आशवासन का केन्द्र बन जाता है; वह सामूहिकता का बोध थोपने के लिए भी संकल्पबद्ध है । परिणामतः दो, प्रायः परस्पर विरोधात्मक देश मुख्यतया पार्थिवता से एवं राष्ट्र प्रशासनिक भावना से जुड़कर - विचारधाराएं एक दूसरे के परिपूरक हैं । भारत-जैसे विशाल उपमहादेश के संदर्भ में सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, आर्थिक विषमता और अनेकता के प्रश्न को उपेक्षित नहीं किया जा सकता । वस्तुतः राष्ट्र एक है एवं देश अनेक देशीयता को ओढ़कर भी विदेश नहीं है । समाजशास्त्रियों, चिंतकों, राष्ट्रवादियों, बुद्धिजीवियों ने भारत की अनेक देशीयता को उसके मौलिक गुणों में गिनाया है । अनेकता में एकता, वैविध्य में एकरूपता इसके मौलिक गुण हैं । चार क्षितिजों के मध्य पैले हुए इस विस्तृत भूमि की अनेकरूपता को केवल भौतिक कह देना ठीक नहीं होगा । प्रत्युत सीधे मानसिकता को भी जोड़ा नहीं जा सकता । प्रत्येक स्वरूप के तहत उसका अपना इतिहास है, वैशिष्ट्य भी । विगत शताब्दियों के साहित्य को अनेकरूपा नहीं कहा जा सकता । अतीत का साहित्य समग्र के लिए अभिप्रेत था । संत्रास तथा एकाकीपन से घुटा हुआ वर्तमान अतीत से भिन्न है । अतः आज का सांप्रतिक संकल्प कुछ और है । संत्रास और अकेलापन इसके सार्थक मुहावरे हैं । संत्रास, अकेलापन, व्यस्तता आदि अपनी-अपनी व्यावहारिकता की दृष्टि से पहले की अपेक्षा ज्यादा नुकीले हैं एवं पुराने आर्थिक-मूल्यों को वे खो चुके हैं । स्वतंत्रता के पश्चात् दो दशकों की अवधि में राष्ट्र की दृष्टि से राष्ट्रीयता को एवं देश की दृष्टि से देशीयता अर्थात् जाति-वर्ग भावना, धर्मभेद-भावना भाषा भेद विचारणा, क्षेत्रीयता आदि को यथेष्ट प्रश्रय मिला । साहित्य की वर्तमान के पूर्व की मान्यता एकाएक कमजोर हो गई । दूसरे शब्दों में जहां साहित्य एक ओर देशाभिमान के विभिन्न पक्षों - विश्वास, रूढ़ि, परम्परा, अंधश्रद्धा, संस्कार आदि को पहचानने का उपक्रम शुरू करता है, दूसरी ओर एकदेशीयता का राष्ट्रवादी नारा भी बुलन्द करता है । इस प्रकार राष्ट्रभावना, देशभावना हमारी स्वातंत्र्योत्तर विचारधारा की प्रवृत्ति है । प्राक-स्वतंत्रता काल में परिकल्पित भास्त का चेहरा बाद में देखने को नहीं मिला । स्वातंत्र्योत्तर भारत का स्वरूप दोनों अंतस्-वाह्य परिवेश में कुछ और था । युगीन जीवन की ओर ध्यान देना पहला कर्तव्य था । वह कौन-सा युगीन जीवन था ? वह थी अंतर्मुखीनता । अंतस् की चेतना

सदैव अहंवादी होती है। अहं का तेजी से विस्तार होता है और वह चतुर्दिक फैल जाता है। साहित्य पर छांह खोजते-ढूँढते देर नहीं लगती। कहानी में अहंवादी चेतना का स्वस्थ निखरा। फलतः कहानी सदर्भित दो दशकों के समग्रबोध की तस्वीर है।

राजेन्द्र यादव का कहना है - "स्वतंत्रता के बाद के कथाकार का एक संसार वह है जो उसके चारों ओर है और जिससे उसे आंतरिक घृणा है, बेहद नफरत है; लेकिन जिसमें रहने, टूटने और समझौता करने को वह बाध्य है। दूसरा संसार वह है, जिसे अपने भीतर से निकालकर उसने बाहर पैला दिया है जिसका 'निर्माण' उसने स्वयं किया है और जो उसके टूटने, घुटने और घिसटने की और भी धिनौनी तस्वीर को सामने रखता है। उसकी असामर्थ्य, पराज्य और हताशा का लेखा है - उसकी नियति है।" ॥ एक दुनिया: समानान्तर पृ० सं० 18-19 ॥

राजेन्द्र यादव के उपर्युक्त कथन से पूर्णतः सहमत होना खतरे से खाली नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि छठा दशक निर्माण का संदेश लेकर उतरा था। युद्ध की विभीषिका के बादल छंट चुके थे। नेहरू जी ने विश्व में शांति लाने के लिए "पंचशील" नीति थोपी थी। उनसे दूरदर्शिता और पारदर्शिता की दाद दी जा रही थी। "नेहरू युग" तो आजाद भारत का "शांतियुग" था। फिर पराज्य और हताशा कैसे? इसका यह मतलब हो जाता है कि समूचे नेहरू युग को, बावजूद इसकी अनेकानेक अच्छाइयों के, बेझिझक खारिज कर देना। वास्तव में कथाकार न किसी असामर्थ्य से गुजरता है और न किसी पराज्य की ग्लानि से। हकीकत यह है कि रचनाकार वक्त से समझौता करता है। केवल रचनाकार नहीं, बल्कि सभी परिस्थिति से समझौता करते हैं; याने अंतस् से और बाह्य से।

प्रश्नों व समस्याओं से स्वतंत्र भारत ने अपने आगे का पथ निर्माण किया था और यह प्रत्येक सद्यः स्वाधीनता प्राप्त देश की नियति है। भारत अपवाद नहीं। उन प्रश्नों और समस्याओं को गिनाना अति सरल है। खाद्यान्न समस्या, शिक्षा समस्या, योजना के लिए अभीष्ट धन-राशि के उपयोग की समस्या। लालपनितेशाही की समस्या - ये राष्ट्र की समस्याएं थीं। देश की समस्याएं इनसे भिन्न थीं और अभी भी यथावत हैं। स्वातंत्र्योत्तर कहानी ने इन राष्ट्रीय समस्याओं को झांक कर देखने का प्रयास अवश्य किया है, किन्तु देशीय चिन्तन में वह कदापि गुमराह न थी।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय साहित्य के विद्वान समीक्षकों का यह एक जबरदस्त अवधारणा है कि युद्धोत्तर साहित्य में अवचेतन की निराशाएं और कुंठाएं हैं; वर्जनाओं के प्रति विद्रोह की भावना है और यांत्रिकी और तकनीकी उत्पाद के कारण मानव-मूल्यों में गिरावट आ गई है। मूल्य संक्रमण का प्रभाव पूरे जीवन के विभिन्न पहलुओं पर स्वतः पड़ता है। यह स्वीकार योग्य तर्क है। इन तर्कों के पीछे दो बातें हैं- ॥ 1 ॥ कार्य ॥ 2 ॥ कारण। कार्य अर्थात् प्रभावगत प्रतिक्रियाओं को देखकर कारण का अनुमान लगाया जाता है। परंतु निर्णयात्मक ढंग से कुछ कह देना हास्यास्पद होगा। युद्ध इनका कारण नहीं है। दूसरे विश्व युद्ध में तो हमारी सिर्फ सैनिक साझेदारी थी। आर्थिक साझेदारी अंग्रेज राज के शोषण का हिस्सा थी। युद्ध न भी होता तो

उतना ही वित्तीय शोषण होता । फिर, युद्ध से हुई हानि और-और मित्र-शत्रु राष्ट्रों की तुलना में भारत ने कम उठायी । इस प्रकार युद्ध की प्रतिक्रिया को हमारे कहानी-साहित्य पर थोपना सही प्रतीत नहीं होता ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानीकारों में अन्यतम प्रमुख हस्ताक्षर कमलेश्वर हैं । उनकी कथा-यात्रा का पहला दौर 1952 से 1959 तक है । इस अवधि में उन्होंने जिन कहानियों की रचना की 'राजा निरबंसिया, कस्बे का आदमी, गर्मियों के दिन, नीली झील' उनमें युद्धोत्तर निराशा तो हावी नहीं है । वे स्वयं कहते हैं - "कहानी लिखना मेरे लिए यातना नहीं है, यातनापूर्ण है वे कारण जो मुझे कहानी लिखने के लिए मजबूर करते हैं और यह मजबूरी तभी होती है जब मेरा अपना संकट दूसरों के संकट से संबद्ध होकर असहाय हो जाता है । या मेरी अपनी कठ्ण्णा दूसरों की संवेदना से मिलकर अनात्म हो जाती है । "कमलेश्वर के कथन से यह बिल्कुल आभासित नहीं होता है कि महायुद्ध की निराशा उनके अवचेतन की सत्ता में कहीं अणु मात्र उजागर है । महेश पाण्डे नीली झील को खरीद कर एक ओर अपने सौन्दर्यबोध का परिचय देता है तो दूसरी ओर पक्षियों को संरक्षण भी देता है । "राजा निरबंसिया" में चन्दा पति द्वारा प्रोत्साहित और मजबूर होकर पाप करती है । उसके लिए समाज-व्यवस्था और पारिवारिक व्यवस्था दायी है । "कस्बे का आदमी" कहानी में छोटे महाराज द्वारा भावुकता, अपनत्व, उदारता, आर्थिक परेशानियाँ आदि कस्बे की सारी विशेषताएँ व्यक्त हुई हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि कमलेश्वर की कहानियों में चाहे "दिल्ली में एक मौत" या "मांस का दरिया" हो आर्थिक विडंबना, वर्गगत यातना के चित्र हैं । कहानी की भावभूमि राष्ट्रीय न होकर देशीय है ।

राष्ट्रीयता और देशीयता की विचारधारा से ओतप्रोत कथाकार की मनःस्थिति के मध्य विभाजक रेखा खींचने की हमारी प्रयत्ना इसलिए है कि अब तब समीक्षकों ने कहानी की सही भावभूमि से दूर स्थित कारणों को बेवजह कहानी पर थोपने का जो प्रयास किया है उसकी यौक्तिकता की तलाश करनी है । आलोचकों के कुछ निराधार शब्द कहानी पर इस प्रकार हावी हैं कि कथा-समीक्षा स्वरसता व स्वरूपता से बोझिल हो गई है । उन्हें समीक्षा शब्दावली से हटाना निहायत जरूर है । निःसंगता, अकेलापन, सूनापन - ऐसे अनेकों शब्दों का जाल पैला हुआ है जिसमें साम्प्रतिक समीक्षा उलझी हुई है । कमलेश्वर, राजेन्द्रयादव, धर्मवीर भारती आदि हिन्दी कहानीकारों की कोटि के सशक्त कथाकार अन्य भारतीय साहित्य में भी वर्तमान हैं । स्वातंत्र्योत्तर उड़िया कथाकारों में सुरेन्द्र महान्ति, नित्यानन्द महापात्र, अच्युतानन्द पति, अखिल मोहन पट्टनायक, शांतनु कुमार, मनोज दास आदि उल्लेखनीय हैं । इनकी कहानियों में भी निःसंगता, अकेलापन, सूनापन आदि से कहानी की भावभूमि आक्रांत हुई-सी प्रतीत नहीं होती । आलोच्य अवधि की बहुचर्चित कहानियों में सुरेन्द्र बाबू की "कृष्णचूड़ा", "मरालर मृत्यु" उल्लेखनीय है । "कृष्णचूड़ा" का युवा पत्रकार सदानन्द में महेश पांडे 'नीली झील' की तरह सौन्दर्यबोध एवं सुख से जीने की ललक है । कृष्णचूड़ा 'गुलमोहर' उसकी रोमांटिक भावना का प्रतीक है ।

"मराल की मृत्यु" में बाबा निरंजन दास आदर्शवादी और इंजीनियर सुबोध की यथार्थवादी चरित्र के रूप में प्रस्तुत किया गया है । आदर्श और यथार्थ के द्वन्द्व में यथार्थ की जीत होती है । अनेकानेक वैचारिक आयामों में जीने वाला आदमीकेदो आयाम आधार स्वल्प हैं - ॥1॥ आस्तिकता ॥2॥ काम प्रवणता । न मनोज दास ने कहीं अकेलेपन की ओर इंगित किया है और न महापात्र नीलमणि साहु ने । शांतनु कुमार तो भीड़ से स्कॉट की ओर आते हैं और स्कॉट से भीड़ की तरफ जाना पसन्द करते हैं । कालिन्दीचरण की कहानियों में निःसंगता का स्थान उनकी सहज आत्मीयता ने ले लिया है । मनोज दास परंपरित भारतवर्ष के भौतिक विश्व में कुछ देर ठहर जाते हैं फिर अंतस् की ओर प्रयाण करते हैं । "विष कन्यार काहाणी" में अनैतिक निःसंगता उजागर है । सचि राउतराय की "रजा-पुअ" कहानी में एक भावप्रवण युवक की प्रणय-कथा मिलती है । इस प्रकार आंचलिकता और क्षेत्रीयता की सद्भावना से परिपूरित उत्तम कहानियों पर अकेलेपन का आरोप लगाना सर्वथा अन्याय है । जहाँ क्षेत्रीयता है वहाँ देशीयता है और जहाँ-कहीं भी देशीयता है वहाँ कहानी का आत्मगौरव है । अतः रचनाकार को अकेलेपन के दल-दल में धकेलना युगीन प्रवृत्ति के साथ अन्याय करना है ।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी और मार्क्सवादी यथार्थ का गठबन्धन भी उपहासास्पद लगता है । आज का समीक्षक वर्ग चेतना के मोह से इस कदर मोहित है कि यदि कहीं भी उपेक्षित, दरिद्र या सताए गये व्यक्ति अथवा पात्र का जाने-अनजाने संदर्भ आ जाता है तो उसे तत्काल प्रगतिवादी विचारधारा से जोड़कर आत्मतुष्टि का अनुभव करता है । परिणामतः मानवीय भाव की सीधे उपेक्षा हो जाती है । रचनाकार अपेक्षाकृत अधिक सचेतन जीव होता है इसमें कोई संदेह नहीं । कहीं भी सामाजिक अन्याय देखता हो, गरीबी हो या असहायता तो उसे वह मानवीय संवेदना के योग्य मानता है, मानना भी चाहिए । उसकी दृष्टि उस रिक्तता पर टिक जाती है जहां शोषण का अहसास होता है । हालांकि वह उस वर्ग का नहीं होता, यथार्थवादी मोह से वह स्वयं अपने को जोड़ देता है । इससे वह पहले शोषित की वास्तविक चेतना को झुठलाता है और फिर, अपने में शोषित अहमियत को आरोपित कर तथा संवेदना की दुहाई देकर काल्पनिक झुठावा पेश करता है । कहानी प्रगतिवादी रचना के बहाव में कितना प्रतिशत यथार्थतः प्रगतिवादी है, यह स्वातंत्र्योत्तर कहानी के संदर्भ में विचारणीय प्रश्न है ।

एक और प्रश्न उठता है । कहानी के प्रसंग में प्रतिबद्धता का सवाल भी बार-बार दुहराया जाता रहा है । प्रतिबद्धता का अर्थ व्यापक है । समाज का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिबद्ध होता है परंतु साहित्यिक प्रतिबद्धता का आशय लोक-कल्याण की भावना है । परिवार, राष्ट्र या देश और समाज से कौन नहीं जुड़ा होता है ? साहित्यकार सबसे पहले रचना से जुड़ा है और उसके बाद और-और पहलुओं से । युगीन प्रवृत्तियों में संत्रास, बेवजह छटपटाहट, संबन्धों की शिथिलता, पूर्व प्रचलित मान्यताओं से जन्मित कष्टों और यातनाओं से प्रतिबद्धता के प्रतिपलन को प्रवृत्तिपरक

कहना समीचीन है । देवेश ठाकुर का कहना है - "यदि प्रबुद्ध व्यक्ति यानी कि साहित्यकार चाहे तो वह प्रकृति और व्यक्ति दोनों के माध्यम से बढ़ाई गई विसंगतियों के शमन की दिशा में प्रशस्त होकर - समत्व के आदर्श को व्यावहारिक भूमिका पर प्रतिष्ठित करने की प्रेरणा दे सकता है । उसका यह प्रयास ही उसकी प्रतिबद्धता कहलाएगी ।" ॥समकालीन हिन्दी कहानी: राजस्थान साहित्य अकादेमी, पृ० सं 47॥ इन विसंगतियों और दुर्दशाओं से किस सीमा तक रचनाकार प्रतिबद्ध है ? रचनाकार इनके इर्द-गिर्द रहता है जरूर, पर वह सदैव उनसे बचना चाहता है । संभव है, वह पहला व्यक्ति है जो अप्रतिबद्ध है । उसकी कल्पित प्रतिबद्धता कथा-साहित्य पर मिलती है । कल्पना को सच्चाई का चोला पहनाया नहीं जा सकता । अपने अंतस् से प्रवंचना का अर्थ है साहित्य के अंतः स्वर के साथ ईमानदारी का अभाव ।

पुनश्च, प्रायः रचनाकार शहरजीवी हैं ग्राम प्रधान भारत की कथा ग्रामीण और मध्यवर्गीय जीवन पर आधारित हैं । नगर निवासी कहानीकार मानसिकता पर स्वभावतः नगरबोध का आधिपत्य है । नगर के मध्यवर्गीय चरित्र उसके माध्यम हैं । यह सच्चाई से दूर नहीं है कि स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन में मध्यमवर्ग का अस्तित्व नहीं था । गाँवों में पुराने तथा ढहने वाले सामंतवादी चरित्र और भूखे-नंगे गाँव वाले मौजूद थे । अधिकांश चरित्र ग्रामीण क्षेत्रों से चुने गए हैं और मध्यम वर्गीय नागरिक का जामा पहनाया गया है । एक ओर स्वयं रचनाकार नगर जीवन के प्रदूषित वातावरण का नागरिक है और अभिशप्त वह इसलिए हैं कि वह कोलाहल, भीड़, अजनबीपन, खवामखवाह व्यस्तता, छले जाने का संत्रास, रिश्ता टूटने की आशंका का शिकार है । आज भी भारतीय गाँवों में उक्त नगर बोध का अभाव है । जिस तरह रचनाकार अपने अभिशापों को ग्रामीण और शहरजीवी मध्यम वर्ग के सिर पर बेझिझक लादना चाहता है । वैसे ही अकारण ही संवेदना का तेवर बुनता है । ऐसी जटिल परिस्थिति में स्वातंत्र्योत्तर कहानी न तो रचनाकार की सच्ची हार्दिक संवेदना की भागीदार बनती है और न समीक्षकों की हमदर्दी पाती है । शेखर जोशी की "कोसी का घटवार" कहानी में शहर से दूर कोसी नदी के किनारे गुसाई नायक और लछमा के पुराने संबंध का पुनर्विन्यास है । लोक जीवन की महक "तीसरी कसम" में है । "मित्रो मरजानी" में पंजाब की धरती की सोंधी गंध है । उड़िया कहानी "मांसर विलाप" में ग्रामीण सामंती जीवन के माध्यम से मानवीय मूलभूत प्रवृत्ति का चित्र है । "परीक्षार फल" में तो पूर्णतः ग्रामीण क्षेत्र के विवाह का प्रसंग है । "क्षणिका" का केन्द्रीय तत्व है - कृत्रिमता से रहित ग्राम-सौंदर्य और ग्राम-युवती के अल्हड़ अम्लान रूप-सौन्दर्य । उल्लिखित सभी कहानियों के रचनाकार नगरजीवी हैं, पर उनकी रचना की भावभूमि मैला-कुचैला ग्रामांचल है । स्पष्टतः ये कहानीकार "रट्टिक व्यूटी" के उपासक हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय कहानी के दुर्भाग्य और दुर्स्थितियों को उक्त विवेचन के आधार पर नीचे लिखे अनुसार रेखांकित किया जा सकता है -

1. बेवजह पराजय, हताशा आदि निराधार शब्दों द्वारा कहानी की अंतर्मुखीनता को गलत ढंग से व्याख्यायित करना ।

2. राष्ट्रीय और देशीय चिंतन को स्पष्टतया निरूपित न करना
3. कहानी की सार्थक भूमि को निःसंगता, अकेलापन, सूनापन जैसे खोखले शब्दों से बोझिल करना ।
4. प्रगतिवाद के बहाने दरिद्र, असहायों के प्रति झूठी हमदर्दी प्रकट करना
5. प्रतिबद्धता की दुहाई देकर रचनाकार का सच्चाई से भागना
6. नगरबोध को ग्रामीण जीवन पर आरोपित करना ।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी और उड़िया कहानी की भावभूमियों के अध्ययन के प्रसंग में हमने दो दशकों ॥1947-1967॥ में रचित कहानियों से बहुचर्चित तथा प्रतिनिधिमूलक कहानियों की भावभूमि की तलाश की है । इस कालखण्ड की अधिकतर कहानियाँ स्वीकृतियों के बजाय भरसक अस्वीकृतियों को उभारने का प्रयास करती हैं । हम यहां जिन स्वीकृतियों की बात कर रहे हैं वे या तो मनोविज्ञान से किसी न किसी बिन्दु से जुड़ती हैं अथवा मनोवैज्ञानिक तथ्य के रूप में समाज-विज्ञान से सरोकार रखती हैं । हमने पूर्व निश्चय के साथ किसी कहानी को उसकी भावभूमि के आधार पर वर्गीकृत करने का आग्रह कदापि नहीं रखा है । सबसे पहले पूर्वाग्रह रहित हो कहानी के माध्यम से उसकी भावभूमि तक पहुँचने का प्रयास किया है एवं विश्लेषणोपरान्त उपर्युक्त तथ्य को प्राप्त किया है । वस्तुतः भावभूमि के स्तर पर समस्त संकीर्णताएं समाप्त हो जाती हैं । भावना की उँचाई या गहराई, आंचलिकता या भाषा भिन्नता से शुद्ध साहित्यिक भावभूमि का कोई सरोकार नहीं है । प्रत्युत सामाजिक मानव की सामान्य मानसिकता कई पूर्वाग्रहों, सीमाओं और विवशताओं से आक्रांत रहती है । न रचनाकार को रचना के क्षणों में उनसे निष्कृति मिलती है और न आलोचक को । टी.एस. इलियट की निर्व्यक्तिकता को न नकारा जा सकता है और न परि-परंपरा से प्रतिबद्ध निर्व्यक्तिकता को अस्वीकार किया जा सकता है । आखिर मानव मानव है । आज का रचनाकार तो अधिक बौद्धिक तथा जागरूक मानव है । भावभूमि दोनों युग-सापेक्ष और व्यक्ति-सापेक्ष्य वस्तु है । यह कहने का तात्पर्य कतई नहीं कि हम भावभूमि की सार्वदेशिकता और सार्वकालिकता को अस्वीकार करते हैं । मूलतः सभी कहानियों की भावभूमि सामाजिक है जिसका कारण स्पष्ट है । जिस समाज की अब तक सर्वसम्मत परिभाषा तय नहीं हो सकी, वह समाज समाज ही है और उसकी गति जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म संभावनाओं तक है । "दोपहर का भोजन" में अमरकांत रोटी के आखिरी टुकड़े, "गुलकी बन्नों में" भारती स्वार्थ के आखिरी टुकड़े को बांटते हैं । दोनों की भाव-भूमि गंभीर है । "कर्मनाशा की हार" समाज के मानवीकृत दुष्कर्म की हार है तो "बंद गली का आखिरी मकान" में समाज-व्यवस्था की पराजय है । शैलेश मटियानी भी उसी पर हथौड़े चलाते हैं । मुक्तिबोध मानव समाज से अनन्य रूप से जुड़कर उसकी संस्कृति की बात चलाते हैं । महापात्र नीलमणि साहु की ब्राह्मणी कन्या नील मास्टरनी धोबी को पति के रूप में स्वीकार करती है । उसके घर में वही होता है जो "बंद गली का आखिरी मकान" में होता है । सांस्कृतिक अवक्षय से उत्पन्न क्षोभ लक्ष्मीकांत महापात्र, गोपीनाथ महांति,

राजकिशोर राय की कहानियों में स्पष्ट है । तीव्र धार्मिक वैमनस्य दोनों हिन्दी और उड़िया कहानियों में मिलता है और उसका समाधान भी मानववादी दृष्टि से ढूँढा गया है । राजनैतिक हथकंडे बराबर होते आए हैं और उससे कला, संस्कृति और साहित्य को हानि उठानी पड़ी है । समाज के भद्र, शिष्ट और पूजनीय व्यक्ति सर्वप्रथम राजनैतिक दांव-पेंच के शिकार होते हैं । प्रस्तुत अवधि की कहानी-साहित्य उक्त पुराने तथ्यों को नई शैली में प्रस्तुत करता है । सचि राउतराय जग्गू तिवारी-जैसे दिले-बेदर्द चरित्र में कर्णा का संचार करते हैं । रांगेय राघव "गदल" में "समष्टि-सत्य" और "व्यक्ति-सत्य" को रू-ब-रू रखकर संतुलन ढूँढते हैं ।

नैतिक, चारित्रिक और शिष्टता का चरम अवसाद प्रस्तुत अवधि का केन्द्रीय तत्व है । प्रत्येक कथा-भूमि पर खड़ा हरेक चरित्र नैतिकता के खण्डहर पर अपनी नैतिकता का प्रचार करता है । पास-पड़ोस के जीवन को शंकातुर होकर ताकता है । समय पाकर विद्रोह करने को तैयार रहता है । हालांकि वास्तविकता से जूझने के बजाए अपने से जूझना ज्यादा पसन्द करता है । मान्यताओं से इसलिए टकराता है कि टकराना उसके स्वार्थ का हिस्सा है । कृष्णा सोबती की "मित्रो मरजानी" नैतिकता को वहम् मानती है । "मांस का दरिया" में कमलेश्वर देह-व्यापार के जिस पक्ष का चित्र देते हैं, "महानगरीर रात्रि" में सुरेन्द्र महंति लगभग वही पेश करते हैं । इन कहानियों में यौन-बुभुक्षा के स्थान पर पेट की बुभुक्षा का तकाजा है । "बदबू" में अपंग यांत्रिक संस्कृति की वीभत्सता है । "खोई हुई दिशाएं" में नपुंसक मॉडर्न आदमी और "पेंस के इधर-उधर" में मॉडर्न परिवार की आत्मकथा है जो अपने से अपना परिचय बढ़ाना चाहते हैं । "वापसी" आधुनिक जीवन की नैतिकता को खुले आम जाहिर करती है । गजाधर बाबू अपने घर में पराये हो जाते हैं और पराये घर में अपने । ज्ञानरंजन की "पिता" कहानी का "पिता" गजाधर ही हैं । "ना मने नाहिं" के अशोक बाबू भी उसी कोटि के हैं । नैतिक परिप्रेक्ष्य में ठेठ देशीयता को जगाने वाली उड़िया कहानी "आचार्य थिले बो लि" है ।

स्वातंत्र्योत्तर कहानी में दो सत्यों का उन्मेष मिलता है - ॥1॥ व्यक्ति-सत्य और ॥2॥ समष्टि सत्य । जनतांत्रिक प्रवृत्ति के विरुद्ध व्यक्ति सत्य अपनी बौद्धिकता के सहारे समग्र युग चेतना को अपने में ही समो लेने का प्रयास करता है और व्यक्ति-सत्य की अहंचेतना को चुनौती देकर समष्टि सत्य राष्ट्रीय बोध को जागृत करता है । फलतः व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक बना-बनाया संतुलन बिगड़ जाता है । यह चर्चित अवधि की प्रमुख भावभूमि है ।

कथा साहित्य प्रेम, अवैध प्रेम, नारी-पुरुष मर्यादा नारी स्वातंत्र्य, अस्पृश्यता और उससे उत्पन्न असामाजिकता एवं अमानवीयता, व्यक्ति स्वातंत्र्य, अभाव, गरीबी, धार्मिक वैमनस्य एवं उससे उत्पन्न संकीर्णता, सामंतवाद नौकरशाही की भयंकरता आदि स्थूल घटनाओं का कभी सीधे तो कभी प्रतीक के माध्यम से वर्णन करता है । वे तो साहित्य रूपी बहाव पर बुलबुले के समान हैं । वे न तो भावभूमि बन सकते हैं और न मूल संवेदना से कोई सरोकार रखते हैं । रचनाकार की सही भावभूमि हमें इंगित करती है कि स्वतंत्रता के बाद भाव-युग का उजड़ना शुरू हो गया । भावों पर जीने

वाली भारतीय मनीषा के मनोराज्य पर "विचार" हावी होने लगा । सन् 1947 से 67 तक की कथा-यात्रा के दौरान क्रमशः भावपक्ष का हास और विचार या बुद्धि पक्ष का विस्तार हुआ है । लक्ष्मीकांत महापात्र, नित्यानन्द महापात्र, कालिन्दीचरण, वामाचरण आदि भाववादी कहानीकार हैं । उनके व्यक्तित्व पर युगीन विचार प्राबल्य का प्रभाव अवश्य पड़ा है, पर निज भावात्मकता के मूल्य पर नहीं । मुक्तिबोध, भारती, राजेन्द्र यादव, भीष्म साहनी, रेणु आदि मूलतः भाववादी रचनाकार हैं । राजेन्द्र यादव, भारती आदि विचारवादी आंदोलन के प्रवर्तक रहे । पर आधुनिकता उनकी रचना का उपजीव्य होते हुए भी विचार प्राबल्य दब-सा गया है । भावभूमि के प्रसंग में यही कहना उचित होगा कि जहां विचारभूमि कहानियों को धीरे-धीरे जटिल जीवन बोध में प्रवेश करने का अवसर प्रदान करती है, वहाँ भाव-भूमि अधिक से अधिक विषयवस्तु को संवेदनेय बनाकर मानवतावाद को घोषित करती है ।

नगरबोध आलोच्य दशकों की कहानी में एक रोग है । नगर, शहर, महानगर के परिवेश में जीने वाला कहानीकार अपने पूर्वाग्रह के साथ रचना-संसार में उतरता है और वह सीधे उपेक्षित वर्ग तथा ग्रामीण क्षेत्र में पहुँच जाता है । उसकी संवेदना या तो मध्यमवर्ग के प्रति या निम्नवर्ग के प्रति होती है । नगरबोध उसकी संवेदना पर जाने-अनजाने हावी हो जाता है । मूल भावभूमि कहीं है तो अभिव्यक्ति की भावभूमि कहीं और । आलोच्य दो दशकों के शहरजीवी रचनाकार का प्रस्तुत मानसिक द्वन्द्व समाधान ढूँढता रहा है । और युगीन बौद्धिक चेतना समाधान देने में असमर्थ है । राष्ट्र गाँवों को शहरीकरण करने पर तुला हुआ है । परंतु शहरीकरण के साथ शहरबोध का विस्तार असंभव है । शहर और गाँव की बुनियादी परिवर्तन के लिए शताब्दियाँ भी यथेष्ट नहीं होंगी ।

कुछ कहानियों की भावभूमि अराष्ट्रीय हैं । उमरी सतह पर उनकी कहानियों की भावभूमि भारतीय-सी लगती हैं । इसका उत्तरदायी लेखक की संवेदनात्मक मानसिकता है । कृष्ण बलदेव वैद्य, डॉ० कृष्ण प्रसाद मिश्र, निर्मल वर्मा की कहानियों की भावभूमि भारतीय लिवास में राष्ट्रतर हैं । वस्तु और चिंतन की दरार को उनकी कहानियों की भाषा और शैली मरहम-पदटी चढ़ाती है । भारतीय महानगरों में भी जीने वाले अति अभिजात वर्ग की भावना राष्ट्रतर नहीं है । क्योंकि उस वर्ग में जीकर भी भारतीय संवेदना वाले चरित्र मिलते हैं । चरित्र, परिवेश या वस्तु कहानी का सब कुछ नहीं है । भावभूमि पर चिन्तन का हावी होना उसको राष्ट्रतर बनाने में जिम्मेदार है ।

अंत में यही कहना चाहेंगे कि हिन्दी-उड़िया कहानियों में सर्वप्रमुख भावभूमि देशीयता है । जगह-जगह राष्ट्रियता की साजिश मिलती है । एक-राष्ट्रीयता के साथ राजनैतिक भावभूमि का समावेश होते ही कहानी कृत्रिम बन जाती है । चाहे हिन्दीतर प्रदेश हो या हिन्दी भाषी प्रदेश इस देश की देशीयता अब भी है और हमेशा रहेगी । कहानी साहित्य पर उसका उत्तम प्रतिफलन हुआ है और होता रहेगा । नयी कहानी के संदर्भ में यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि देशीयता के चित्रण में इसकी शक्ति अपेक्षाकृत अधिक धारदार रही है ।